# विशेष/इन-डेप्थ: महाभियोग

**संदर्भ एवं पृष्ठभूमि**

सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश दीपक मिश्रा को पद से हटाने के लिये कुछ विपक्षी दलों ने महाभियोग प्रस्ताव लाने के लिये उपराष्ट्रपति और राज्यसभा के सभापति वेंकैया नायडू को नोटिस दिया है। इस पर सात विपक्षी दलों के 64 सांसदों ने हस्ताक्षर किये हैं। महाभियोग प्रस्ताव लाए जाने के इस प्रस्ताव पर 71 सांसदों ने हस्ताक्षर किये थे, लेकिन इनमें से 7 अब रिटायर हो चुके हैं।

- नवीनतम घटनाक्रम में संविधान विशेषज्ञों से इस मसले पर सलाह-मशविरा करने के बाद 23 अप्रैल को उपराष्ट्रपति और राज्यसभा के सभापति वेंकैया नायडू ने महाभियोग के नोटिस को खारिज कर दिया।
- सभापति के नोटिस अस्वीकार करने के आदेश को यदि सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती दी जाती है, तो उस पर सुनवाई करने वाली पीठ का निर्णय मुख्य न्यायाधीश ही करेंगे, क्योंकि वही मास्टर ऑफ रोस्टर हैं।

**ये पाँच आरोप लगाए गए हैं**

मुख्य न्यायाधीश के खिलाफ महाभियोग प्रस्ताव की प्रक्रिया शुरू करने के निम्नलिखित पाँच आधार बताए गए हैं, जो कि सभी पद के दुरुपयोग से जुड़े हुए हैं।

**1.** इलाहाबाद उच्च न्यायालय के जज के खिलाफ आरोपों की जानकारी होते हुए भी मुख्य न्यायाधीश दीपक मिश्रा ने सीबीआई को कार्रवाई शुरू करने की अनुमति नहीं दी।

**2.** मुख्य न्यायाधीश के प्रशासनिक फैसलों को लेकर भी नाराज़गी है। बैक डेटिंग के आरोप। 6 नवंबर का नोट जस्टिस चेलमेश्वर के समक्ष सुनवाई के लिये 9 नवंबर को लाया गया।

**3.** मुख्य न्यायाधीश जब वकील थे तब उन्होंने गलत हलफनामा दायर कर ज़मीन हासिल की। 1985 में ज़मीन का पट्टा रद्द कर दिया गया, लेकिन दीपक मिश्रा जब 2012 में सर्वोच्च न्यायालय में आए तब उन्होंने ज़मीन लौटाई।

**4.** मुख्य न्यायाधीश ने अपने पद का दुरुपयोग किया है। उन्होंने अपने मास्टर ऑफ रोस्टर के अधिकार का इस्तेमाल करते हुए संवेदनशील मामलों को सुनवाई के लिये विशेष पीठों को सौंपा।

**5.** सर्वोच्च न्यायालय के चार जजों को मीडिया में आकर प्रेस कॉन्फ्रेंस करनी पड़ी। उन्होंने मुख्य न्यायाधीश की कार्यशैली पर सवाल उठाए और चार जजों की चिंताओं का अभी तक निराकरण नहीं हुआ है।

**संवैधानिक प्रावधान क्या हैं?**

- महाभियोग प्रस्ताव का उल्लेख देश के संविधान के अनुच्छेद 61, 124 (4) व (5), 217 और 218 में किया गया है। संविधान की धारा 124 में भारत के जजों की नियुक्ति की पूरी प्रक्रिया का उल्लेख है, जिसका भाग 4 कहता है कि देश के मुख्य न्यायाधीश को संसद में महाभियोग की प्रक्रिया के माध्यम से केवल संसद ही हटा सकती है।
- जज (इन्क्वॉयरी) एक्ट 1968 कहता है कि मुख्य न्यायाधीश या अन्य किसी जज को केवल अनाचार या अक्षमता के आधार पर ही हटाया जा सकता है, लेकिन इसकी परिभाषा स्पष्ट नहीं है। हालाँकि इसमें आपराधिक गतिविधियाँ या अन्य न्यायिक अनैतिकताएँ शामिल हैं।

**प्रक्रिया क्या है?**

- मुख्य न्यायाधीश के खिलाफ महाभियोग प्रस्ताव पेश करने के लिये लोकसभा में 100 सांसदों और राज्यसभा में 50 सदस्यों के हस्ताक्षर युक्त महाभियोग प्रस्ताव की ज़रूरत होती है।
- इसके बाद यह प्रस्ताव संसद के किसी एक सदन में पेश किया जाता है।
- इसके बाद इसे राज्यसभा के चेयरमैन या लोकसभा के स्पीकर को सौंपा जाता है।
- राज्यसभा चेयरमैन या लोकसभा स्पीकर पर यह निर्भर करता है कि वह इस प्रस्ताव पर क्या फैसला लेते हैं। इसे मंज़ूर भी किया जा सकता है और

नामंज़ूर भी।

- यदि राज्यसभा चेयरमैन या लोकसभा स्पीकर इस प्रस्ताव को मंज़ूर कर लेते हैं तो आरोपों की जाँच के लिये तीन सदस्यीय समिति का गठन किया जाता है।
- इस समिति में सर्वोच्च न्यायालय का एक सिटिंग जज, उच्च न्यायालय का एक मुख्य न्यायाधीश/ न्यायाधीश और एक कानूनविद (जज, वकील या स्कॉलर) शामिल होता है।
- यदि समिति को लगता है कि आरोपों में दम है और ये सही हैं तो सदन में रिपोर्ट पेश की जाती है, जहाँ से इसे दूसरे सदन में भेजा जाता है।
- उसके बाद आरोपी जज को भी अपने बचाव का मौका मिलता है।
- यदि इस रिपोर्ट को दोनों सदनों में दो-तिहाई बहुत मिलता है तो महाभियोग प्रस्ताव पारित हो जाता है।
- प्रस्ताव पारित होने के लिये मिले वोटों का सदन की कुल सदस्य संख्या के आधे से ज़्यादा होना और मौजूद सदस्यों की संख्या के दो-तिहाई से ज़्यादा होना अनिवार्य है।
- इसके बाद राष्ट्रपति अपने अधिकार का इस्तेमाल करते हुए मुख्य न्यायाधीश को हटाने का आदेश दे सकते हैं।

**अब तक सामने आए महाभियोग के मामले**

महाभियोग की प्रक्रिया भारत में ब्रिटेन जैसी ही है। वैसे जजों पर कार्रवाई के लिये **जजेज़ इंक्वायरी एक्ट, 1968** बना हुआ है, लेकिन इसके तहत प्रक्रिया बेहद जटिल और समय लेने वाली है। इसमें न्यायाधीशों के खिलाफ महाभियोग की प्रक्रिया का उल्लेख है, लेकिन यदि महाभियोग जैसी स्थितियाँ नहीं हैं तो इसके विषय में इस कानून में कोई उल्लेख नहीं है।

भारत में आज तक किसी जज को महाभियोग लाकर हटाया नहीं गया क्योंकि इससे पहले के सारे मामलों में कार्यवाही कभी पूरी ही नहीं हो सकी। या तो प्रस्ताव को बहुमत नहीं मिला या फिर जजों ने उससे पहले ही इस्तीफ़ा दे दिया।

- भारत में अब तक केवल दो न्यायाधीशों को महाभियोग प्रस्ताव का सामना करना पड़ा है।

**1. वी. रामास्वामी मामला:** आज़ाद भारत में पहली बार किसी जस्टिस को पद से हटाने की कार्यवाही 1991 में हुई थी। सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश वी. रामास्वामी महाभियोग का सामना करने वाले पहले जस्टिस थे। उनके खिलाफ 1991 में महाभियोग प्रस्ताव लाया गया था। उनके खिलाफ 1990 में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के पद पर रहते हुए भ्रष्टाचार के गंभीर आरोपों के आधार पर पद से हटाने के लिये महाभियोग प्रस्ताव पेश किया गया था। हालाँकि यह प्रस्ताव लोकसभा में गिर गया था, क्योंकि उस वक्त सत्ता में मौजूद कांग्रेस ने वोटिंग में हिस्सा नहीं लिया और प्रस्ताव को दो-तिहाई बहुमत नहीं मिल सका था।

**2. सौमित्र सेन मामला:** कलकत्ता उच्च न्यायालय के जज सौमित्र सेन देश के दूसरे ऐसे जज थे, जिन्हें 2011 में अनुचित व्यवहार के लिये महाभियोग का सामना करना पड़ा। उन्हें 1983 के एक मामले में, जब वह वकील थे, 33.23 लाख रुपए की हेरा-फेरी और कलकत्ता की एक अदालत के सामने तथ्यों को गलत तरीके से पेश करने के आरोप में दोषी ठहराया गया था। तब सौमित्र सेन को एक वकील के तौर पर अदालत ने रिसीवर नियुक्त किया था। यह भारत का अकेला ऐसा महाभियोग का मामला है जो राज्यसभा में पारित होकर लोकसभा तक पहुँचा था। हालाँकि लोकसभा में इस पर मतदान होने से पहले ही उन्होंने इस्तीफा दे दिया था। राष्ट्रपति को भेजे अपने त्यागपत्र में उन्होंने लिखा था कि वह किसी भी तरह के भ्रष्टाचार के दोषी नहीं हैं।

दिसंबर 2009 में ही राज्यसभा में कर्नाटक उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश **पी.डी. दिनाकरन** के खिलाफ महाभियोग लाने की प्रक्रिया तब शुरू हुई थी, जब उन्हें सर्वोच्च न्यायालय में जज नियुक्त किया गया था। उन पर पद का दुरुपयोग करके ज़मीन हथियाने और बेशुमार संपत्ति अर्जित करने जैसे आरोप लगे थे। इस मामले में भी राज्यसभा के ही 75 सदस्यों ने उन्हें पद से हटाने के लिये प्रस्ताव दिया था। पी.डी. दिनाकरन के खिलाफ लगे भ्रष्टाचार के आरोपों की जांच के लिये राज्यसभा के सभापति ने एक न्यायिक समिति गठित की थी। आरोप लगने के बाद उनका स्थानांतरण सिक्किम उच्च न्यायालय में हो गया था। लेकिन उनके खिलाफ महाभियोग की कार्रवाई शुरू हो पाती, इसके पहले ही उन्होंने इस्तीफा दे दिया।

2015 में मध्य प्रदेश हाईकोर्ट के **जस्टिस एस.के. गंगले** के खिलाफ राज्यसभा के 58 सांसदों ने महाभियोग प्रस्ताव का नोटिस सभापति को दिया था। उन पर 2015 में एक महिला न्यायाधीश के यौन उत्पीड़न का आरोप लगा था। उन्होंने इस्तीफा देने की बजाय जाँच का सामना करना उचित समझा। राज्यसभा के सभापति ने आरोप की जाँच के लिये तीन सदस्यीय समिति का गठन किया था। दो साल तक चली जाँच में उन पर यौन उत्पीड़न का आरोप साबित नहीं हुआ और महाभियोग प्रस्ताव सदन में पेश नहीं हुआ।

गुजरात हाईकोर्ट के **जस्टिस जे.बी. पारदीवाला** के खिलाफ भी महाभियोग की कार्यवाही के लिये राज्यसभा में 58 सदस्यों का हस्ताक्षरित प्रतिवेदन दिया गया था। जस्टिस पारदीवाला के खिलाफ उनके 18 दिसंबर, 2015 के एक फैसले में आरक्षण के बारे में की गई टिप्पणियों को लेकर यह प्रस्ताव दिया गया था। लेकिन मामले के तूल पकड़ते ही जस्टिस पारदीवाला ने 19 दिसंबर को इन टिप्पणियों को फैसले से निकाल दिया।

आंध्र प्रदेश एवं तेलंगाना उच्च न्यायालय के न्यायाधीश **जस्टिस सी.वी नागार्जुन रेड्डी** के खिलाफ भी महाभियोग की कार्यवाही के लिये 2016 में राज्यसभा में प्रतिवेदन दिया गया था, जो विफल हो गया था। उन पर अधीनस्थ अदालत के कामकाज में हस्तक्षेप कर न्यायिक प्रक्रिया में हस्तक्षेप करने और एक कनिष्ठ दलित न्यायाधीश के खिलाफ जातिसूचक शब्दों का इस्तेमाल करके अपशब्द कहने का आरोप लगाया गया था। इस प्रस्ताव में दावा किया गया था कि उनके खिलाफ जाँच शुरू करने के लिये प्रथम दृष्टया पर्याप्त सामग्री है, लेकिन राज्यसभा सभापति को दिये गए प्रस्ताव पर 54 हस्ताक्षर करने वालों में से 9 ने अपने हस्ताक्षर बाद में वापस ले लिये थे।

**अनुच्छेद 142 के तहत सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की शक्तियाँ**

पिछले कुछ समय से सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिये गए कई न्यायिक निर्णयों के पश्चात् पुनः अनुच्छेद 142 की सार्थकता का मुद्दा उभर आया है।

- अनुच्छेद 142 सर्वोच्च न्यायालय का वह साधन है जिसके माध्यम से वह ऐसी महत्त्वपूर्ण नीतियों में परिवर्तन कर सकता है जो जनता को प्रभावित करती हैं।
- दरअसल, जब अनुछेद 142 को संविधान में शामिल किया गया था तो इसे इसलिये वरीयता दी गई थी क्योंकि सभी का यह मानना था कि इससे देश के विभिन्न वंचित वर्गों अथवा पर्यावरण का संरक्षण करने में सहायता मिलेगी।

**भोपाल गैस त्रासदी मामला:** सर्वोच्च न्यायालय ने यूनियन कार्बाइड मामले को भी अनुच्छेद 142 से संबंधित बताया था। यह मामला भोपाल गैस त्रासदी के पीड़ितों से जुड़ा हुआ है। इस मामले में न्यायालय ने यह महसूस किया कि गैस के रिसाव से पीड़ित हज़ारों लोगों के लिये मौजूदा कानून से अलग निर्णय देना होगा। इस निर्णय में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पीड़ितों को 470 मिलियन डॉलर का मुआवज़ा दिलाए जाने के साथ ही यह भी कहा गया था कि अभी पूर्ण न्याय नहीं हुआ है।

- न्यायालय के अनुसार, सामान्य कानूनों में शामिल की गई सीमाएँ अथवा प्रावधान संविधान के अनुच्छेद 142 के तहत संवैधानिक शक्तियों के प्रतिबंध और सीमाओं के रूप में कार्य करते हैं। अपने इस कथन से सर्वोच्च न्यायालय ने स्वयं को संसद अथवा विधायिका द्वारा बनाए गए कानून से सर्वोपरि माना था।
- संयोग से इसी तथ्य को बाद में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा 'बार एसोसिएशन बनाम भारत संघ' मामले में भी दोहराया गया। इस मामले में यह कहा गया कि इस अनुच्छेद का उपयोग मौजूदा कानून को प्रतिस्थापित करने के लिये नहीं, बल्कि एक विकल्प के तौर पर किया जा सकता है।
- हालाँकि, हालिया समय में सर्वोच्च न्यायालय ने कई ऐसे निर्णय दिये हैं जिनमें यह अनुच्छेद उन क्षेत्रों में भी हस्तक्षेप करता है जिन्हें न्यायालय द्वारा शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत के माध्यम से भुला दिया गया है। उल्लेखनीय है कि **'शक्तियों के पृथक्करण'** का सिद्धांत भारतीय संविधान के मूल ढाँचे का एक भाग है।
- वस्तुतः इन सभी न्यायिक निर्णयों ने अनुच्छेद 142 के विषय में एक अलग ही विचार दिया। इन मामलों में व्यक्तियों के मूल अधिकारों को नज़रंदाज़ किया गया था। दरअसल, यह पाया गया है कि न्यायालय किसी निश्चित मामले में केवल अपना निर्णय सुनाता है परंतु वह उस निर्णय के दीर्घावधिक परिणामों से अनजान रहता है जिनके चलते उस व्यक्ति के मूल अधिकारों का भी उल्लंघन हो जाता है जो उस वक्त न्यायालय के समक्ष उपस्थित नहीं होता है।
- यह सत्य है कि अनुच्छेद 142 को संविधान में इस उद्देश्य से शामिल किया गया था कि इससे जनसंख्या के एक बड़े हिस्से तथा वास्तव में राष्ट्र को लाभ प्राप्त होगा। इसके अतिरिक्त, सर्वोच्च न्यायालय ने यह भी माना था कि इससे सभी वंचित वर्गों के दुःख दूर हो जाएंगे; परंतु यह उचित समय है कि इस अनुच्छेद के सकारात्मक और नकारात्मक दोनों ही पक्षों पर भी गौर किया जाए।

**क्या है न्यायिक संयम?**

न्यायिक संयम, न्यायिक हस्तक्षेप की एक संकल्पना है जो न्यायाधीशों को उनकी स्वयं की शक्ति को सीमित करने के लिये प्रेरित करती है। यह सुनिश्चित करती है कि न्यायाधीशों को तब तक नियमों में बदलाव नहीं करना चाहिये जब तक वे असंवैधानिक प्रतीत न हों क्योंकि असंवैधानिक कानून स्वयं ही विवाद का विषय बन जाते हैं।

**और क्या कहता है संविधान का अनुच्छेद 142?**

- जब तक किसी अन्य कानून को लागू नहीं किया जाता तब तक सर्वोच्च न्यायालय का आदेश सर्वोपरि।
- अपने न्यायिक निर्णय देते समय न्यायालय ऐसे निर्णय दे सकता है जो इसके समक्ष लंबित पड़े किसी भी मामले को पूर्ण करने के लिये आवश्यक हों और इसके द्वारा दिये गए आदेश पूरे देश में तब तक लागू होंगे जब तक इससे संबंधित किसी अन्य प्रावधान को लागू नहीं कर दिया जाता है।
- संसद द्वारा बनाए गए कानून के प्रावधानों के तहत सर्वोच्च न्यायालय को सम्पूर्ण भारत के लिये ऐसे निर्णय लेने की शक्ति है जो किसी भी व्यक्ति की मौजूदगी, किसी दस्तावेज़ अथवा स्वयं की अवमानना की जाँच और दंड को सुरक्षित करते हैं।

(टीम दृष्टि इनपुट)

**निष्कर्ष:** भारतीय न्यायपालिका के काम करने के तरीकों में जवाबदेही की कोई व्यवस्था नहीं है। न्यायपालिका हमारे देश में विधायिका और कार्यपालिका दोनों से ही स्वतंत्र है और एक सार्वजनिक तथा खुली न्यायिक प्रणाली के तहत जवाबदेह है। भारत में आज तक उच्च न्यायपालिका के किसी जज को महाभियोग लाकर हटाया नहीं गया है, क्योंकि यह प्रक्रिया इतनी जटिल है कि कभी कार्यवाही पूरी ही नहीं हो सकी। देश के मुख्य न्यायाधीश के खिलाफ संसद में महाभियोग लाने के बाद सोशल मीडिया सहित अन्य साधनों में जिस तरह से तर्क-कुतर्क किये जा रहे हैं, उन्हें देखकर तो ऐसा लगता है कि हमारा सामाजिक विमर्श रास्ता भटक गया है। किसी भी जाग्रत लोकतंत्र में सवाल उठने लाजमी हैं...कभी-कभी कुछ आरोप भी लग सकते हैं...कुछ गलतफहमियाँ भी पैदा हो सकती हैं, पर बदनीयती न हो, तो उन पर आसानी से पार पाया जा सकता है। यह पहला मौका है, जब मुख्य न्यायाधीश के खिलाफ महाभियोग लाने की कोशिश की गई।

यह सही है कि राज्यसभा के सभापति ने महाभियोग के नोटिस को ख़ारिज कर दिया, लेकिन इस पर जिस प्रकार चर्चाओं का बाज़ार गरम हुआ उससे बेहतर तो यही होता कि इसके लिये उचित समय की प्रतीक्षा की जाती। अगर हर राह चलता ऐरा गैरा नत्थू खैरा सर्वोच्च संस्थाओं पर अपने एक्सपर्ट कमेंट करने लगेगा, तो फिर उनकी हैसियत क्या रह जाएगी? और बिना हैसियत, साख और रसूख के न कोई संस्था चल सकती है, न सरकार; और न ही राष्ट्रीय संप्रभुता बची रह सकती है। इस समय सबसे बड़ी आवश्यकता सर्वोच्च न्यायालय की साख बचाने और इसके आड़े आने वाली गलतियों को ठीक करना है। साथ ही, यह भी उतना ही सच है कि इसकी भीतरी कार्यप्रणाली को दुरुस्त करने का काम सरकार या विपक्ष की दखलंदाजी से नहीं, अंतत: न्यायमूर्तियों की आपसी समझदारी से ही हो पाएगा।

PDF Refernece URL: https://www.drishtiias.com/hindi/printpdf/impeachement